लोभ—लालच
की
तबाहकारियाँ

(धर्मों की रौशनी में)

एस० कौसर लईक़

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो बड़ा ही मेहरबान और रह्म करनेवाला है।)

दो शब्द

लोभ-लालच और कृपणता जैसे दुर्गुण यदि किसी व्यक्ति में पाए जाते हैं, तो यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वह अपने-आपको गँवा बैठा है। उसमें यह संभावना रखी गई थी कि वह जीवन की चरम स्थिति को प्राप्त हो, लेकिन उसने उसे नष्ट कर दिया।

यह जीवन का विनाश है, जिसकी ओर साधारणतया लोग ध्यान नहीं देते। क़ुरआन में स्पष्टतः कहा गया है कि सफलता के लिए ज़रूरी है कि आदमी लोभ और कृपणता से मुक्त हो।

लेखक ने लोभ-लालच के प्रत्येक पहलू पर विस्तारपूर्वक विचार व्यक्त किया है और लोभ जैसे दुर्गुण से छुटकारा पाने के लिए प्रेरित किया है। आशा है कि पाठकगण इससे पूरा लाभ उठाएँगे।

भवदीय

—मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

लोभ

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्।
तृषाऽऽर्त्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः।।
(हितो॰ 1/154)

"लोभ से मनुष्य की बुद्धि चंचल हो जाती है और लोभ से मनुष्य को तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में भी दुख पाता है।"

लोभ से अभिप्राय

लोभ मनुष्य की वह मानसिक स्थिति है, जब व्यक्ति किसी भी वस्तु को दीवानगी की हद तक चाहने लगता है और उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी सीमा तक जाने को तैयार हो जाता है। मनुष्य के अन्दर एक ही समय में यह लोभ किसी एक वस्तु या एक साथ कई वस्तुओं के प्रति उत्पन्न हो सकता है। यथा एक व्यक्ति जहाँ एक ओर धन-दौलत की प्रचुरता (ज़्यादती) को दीवानगी की हद तक चाहता है, वहीं वह ऐश्वर्य और मुक्ति भी चाहता है। लेकिन यह सत्य है कि किसी भी वस्तु की चाहत की तीव्रता व्यक्ति में एक ही समय में किसी एक वस्तु के प्रति ही अधिक होती है, जिसमें वह खोकर रह जाता है। जब व्यक्ति को वह वस्तु प्राप्त हो जाती है जिसे वह चाहता होता है, तब भी उस वस्तु को और अधिक-से-अधिक मात्रा में प्राप्त करने की तड़प उसके मन में पहले की तरह ही बनी रहती है तब यही चाहत की तड़प लोभ कहलाती है। मनुष्य में लोभ के पैदा हो जाने के बाद उसके अन्दर एक ऐसी प्यास और चाह बेदार हो जाती है, जो कभी तृप्त नहीं होती, अर्थात् मनुष्य के अन्दर एक विशिष्ट प्रकार की प्यास, आलिप्सा, असन्तुष्टि और अपूर्ण-इच्छा की स्थिति अपेक्षित वस्तु के प्रति सदैव बनी

रहती है। जब मनुष्य में यह लोभ आध्यात्मिक एवं पारलौकिक वस्तुओं—यथा ज्ञान, विद्या, भक्ति, सुकर्म और ईश्वर-दर्शन इत्यादि के प्रति पैदा होता है और मनुष्य अपेक्षित चरित्र अपनाकर इन्हें अधिक-से-अधिक प्राप्त करने का प्रयास करता है तो यह लोभ मनुष्य को समाज में उच्च-से-उच्च स्थान तक ले जाता है और मनुष्य जगत् में एक सम्माननीय और प्रशंसनीय व्यक्तित्व का स्वामी बनकर अस्तित्व में आता है। किन्तु जब यही लोभ मनुष्य के अन्दर इहलौकिक एवं भौतिक वस्तुओं—यथा धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य की चाहत, शक्ति एवं अधिकार इत्यादि के प्रति पैदा होता है, तो यह लोभ मनुष्य को प्रायः निम्न-से-निम्नतम स्तर में पहुँचा देता है और मनुष्य का व्यक्तित्व समाज में अधम, क्षुद्र, अनुदार, क्रूर, ज़ालिम, दुष्ट, बदकार, संकीर्ण-हृदय और अत्यन्त वीभत्स एवं कुत्सित रूप में सामने आता है। धर्मशास्त्रों और विद्वजनों ने इहलौकिक (दुनियावी) वस्तुओं एवं भौतिक सामग्रियों के प्रति पैदा होनेवाले लोभ को मात्र 'लोभ' शब्द से ही व्यक्त किया है, इसी लिए आगे 'लोभ' से अभिप्राय हमारा भी इसी भौतिक और इहलौकिक वस्तुओं के प्रति पैदा होनेवाले लोभ से होगा।

जब मनुष्य में लोभ आ जाता है

मनुष्य में जब लोभ पैदा हो जाता है, तो मनुष्य के अन्दर से सब्र, संयम, सन्तुष्टि और सन्तोष समाप्त हो जाते हैं और इनके स्थान पर मनुष्य में असन्तुष्टि, अतृप्ति, मोह और अधिक-से-अधिक वस्तु की चाहत एवं लालच इत्यादि अमानवीय अवगुणों का राज्य हो जाता है। मनुष्य के अन्दर एक ऐसा असन्तोष एवं भोगवाद जन्म ले लेता है कि मनुष्य किसी भी अपेक्षित वस्तु को जितना अधिक प्राप्त करता जाता है उसकी प्यास और चाहत उसके हृदय में और बढ़ती चली जाती है। फिर इस प्यास व चाहत के प्रभाव में आकर व्यक्ति अपेक्षित वस्तु के आधिक्य संग्रहण और जमा करने में ऐसा गिरफ़्तार हो जाता है कि वह धर्म व अधर्म, नीति-अनीति किसी भी मर्यादा को तोड़ने में झिझक महसूस नहीं करता। वस्तुतः वह नैतिक दृष्टि से एक नेत्रहीन व अन्धे की भाँति हो जाता है कि उसे कोई नीति या अनीति दिखाई नहीं देती। उसे अपनी अपेक्षित वस्तु के प्राप्त करने में किसकी क्या हानि

हो रही है, किसका उसके द्वारा हक़ मारा जा रहा है, उसके किसी अमल से किसी को क्या तकलीफ़ पहुँच रही है उसे कुछ भी इसका एहसास नहीं होता। हाँ, यदि उस लोभी के किसी कर्म से उसकी कोई अपनी हानि होती है, या उसका कोई हक़ मारा जा रहा होता है या मारा जा चुका हो, तो उसकी दिन-रात की नींद हराम हो जाती है। वह सदैव बेचैन और परेशान रहने लगता है। हितोपदेश के लेखक नारायण पण्डित का कहना है कि कितना ही बड़ा कोई विद्वान क्यों न हो, अगर वह लोभ में पड़ता है तो दुख ज़रूर पाएगा। कहा—

सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयतो बहुश्रुताः।
छेत्तारः संशयानां च क्लिश्यन्ते लोभमोहिताः।।

(मित्रलाभ 1/26)

अर्थात् "बड़े-बड़े शास्त्रों को पढ़नेवाले, बहुत बातों को जाननेवाले, सब प्रकार के भ्रमों को दूर करनेवाले लोग भी लोभ में पड़कर दुख भोगते हैं।"

इसी प्रकार लोभ को हर पाप का मूल कारण मानते हुए कहा—

लोभात्क्रोधः प्रभवति, लोभात्कामः प्रजायते।
लोभान्मोहश्च नाशश्च, लोभः पापस्य कारणम्।।

(मित्रलाभ, 1/27)

"लोभ ही से क्रोध उत्पन्न होता है, लोभ ही से काम उत्पन्न होता है और लोभ ही से मोह (अज्ञान) भी उत्पन्न होता और लोभ ही से मनुष्य का नाश भी होता है, अतः लोभ ही सब पापों का मूल कारण है।"

लोभी का चरित्र

वस्तुतः जिस पर लोभ प्रभावी हो चुका होता है, उसकी आत्मा मृत-प्राय होकर रह जाती है और वह व्यक्ति नैतिक एवं आध्यात्मिक जगत् में मर चुका होता है। उसकी हृदय-संवेदना—जो जीवन का प्रमुख गुण है—ख़त्म हो चुकी होती है। लोभी व्यक्ति को बुराई की किसी भी सीमा तक गिर जाने

में कोई झिझक नहीं होती। ऐसे व्यक्ति का वास्तव में न कोई धर्म होता है और न ही उसकी दृष्टि में कोई ईश्वर। यद्यपि इस प्रकार के लोग देखने में कभी-कभी बड़े धार्मिक ईमानदार नज़र आते हैं, लेकिन इनकी यह ईमानदारी और धार्मिकता मात्र लोगों को धोखा देने और अपनी पारसाई जताकर धन व कोई भी वस्तु प्राप्त करने तक ही सीमित होती है। ये पाखण्ड करने में अत्यन्त प्रवीण्य और बहुत ही कुशल होते हैं। इनके पाखण्ड को पकड़ पाना सामान्य व्यक्तियों के वश की बात नहीं होती। वस्तु का लोभ एवं मोह इनके मन- मस्तिष्क को इतना भ्रमित करके रखता है कि यथार्थतः ईश्वर के अस्तित्व पर इनकी बुद्धि कुण्ठित होकर रह जाती है। इनके लिए इनकी अपेक्षित वस्तु ही इनका आराध्य बन जाती है। उदाहरणतः धन के लोभी के लिए धन, अधिकार और पद के लोभी के लिए पद और अधिकार, भोग-विलास की वस्तुओं के लोभी के लिए भोग-विलास की वस्तुएँ और इसी तरह की अन्य चीज़ें ही उनका अपना ईष्ट-देवता एवं प्रभु-पूज्य के समान होती हैं, जिन पर वे तन-मन से न्योछावर रहते हैं। यह अलग बात है कि यह तथ्य प्रायः सामान्य लोगों को स्पष्ट दिखाई नहीं देता और न उन पर प्रकट ही हो पाता, लेकिन दृष्टिवान लोग इस तथ्य को सहज ही झाँक लेते हैं।

लोभी व्यक्ति की मानसिकता

लोभी व्यक्तियों की मानसिक स्थिति अत्यन्त क्रूर एवं विचित्र होती है। उनके अन्दर से दानशीलता एवं विशाल-हृदय का अन्त हो चुका होता है। वे बड़े ही तंगदिल (कृपण व कंजूस) और ज़ालिम हो चुके होते हैं। कौन-किसका शत्रु है—की चर्चा करते हुए आचार्य चाणक्य कहते हैं—

लुब्धानां याचकः शत्रुमूर्खाणां बोधकः रिपुः।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चोराणां चन्द्रमा रिपुः।।

(चा॰नी॰ 10/6)

अर्थात् "लोभी व्यक्तियों के लिए भीख, चन्दा, तथा दान माँगनेवाले व्यक्ति शत्रु रूप होते हैं, क्योंकि माँगनेवाले को देने के लिए उन्हें अपनी गाँठ के धन को छोड़ना पड़ता है। इसी प्रकार मूर्खों को भी समझाने-बुझानेवाला

व्यक्ति अपना दुश्मन लगता है, क्योंकि वह उनकी मूर्खता का समर्थन नहीं करता। दुराचारिणी स्त्रियों के लिए पति ही उनका शत्रु होता है, क्योंकि उसके कारण उनकी आज़ादी और स्वच्छन्दता में बाधा पड़ती है। चोर चन्द्रमा को अपना शत्रु समझते हैं, क्योंकि उन्हें अन्धेरे में छिपना सरल होता है, चाँद की चाँदनी में नहीं।"

शुक्राचार्य जी लोभी व्यक्तियों की क्रूर मानसिकता को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि लोभी राज्य-लोभ में आकर अपने रक्षक राजा को भी मार डालते हैं। (दे॰शु॰नी॰ 2/18-19) दूसरे शब्दों में यह कि लोभी व्यक्ति किसी के भी अपने नहीं होते। इनके अन्दर अनैतिकता के सभी सम्भव दुर्गुण हो सकते हैं। ये अत्यन्त चालाक, झूठे, फ़रेबी, बददियानत, हिसाब-किताब में हेरा-फेरी करनेवाले, धूर्त, दिल के ख़ोटे, क्रूर, संकीर्ण-हृदय, दुष्ट, आचारहीन, पाखण्डी, ढोंगी, अधर्मी, अन्यायी, बेईमान मतलब यह कि वे अधमता के सभी अवगुणों के धारकों में से कुछ भी हो सकते हैं या सबकुछ एक साथ हो सकते हैं, और वह इसलिए कि इनके धन की लोलुपता और किसी भी वस्तु की चाहत इन्हीं राहों से पूरी होती इन्हें दिखाई देती है।

महात्मा कबीर जी कहते हैं—

कबीर औंधी खोपड़ी कबहुँ धापै नाहिं।
तीन लोक की संपदा कब आबै घर माहिं।।

अर्थात् "कबीर जी कहते हैं कि लोगों की उल्टी खोपड़ी होती है कि वह धन से कभी सन्तुष्ट नहीं होती तथा हमेशा यही सोचती है कि तीनों लोकों की सम्पत्ति कब उसके घर आ जाए।"

मन के लोभी हो जाने पर कबीर जी कहते हैं कि वह सब कुछ भूल जाता है, अगर याद रहता है, तो बस यह कि धन कैसे बढ़े। कहते हैं—

जब मन लागा लोभ से गया विषय में खोय।
कहै कबीर विचारि कें, केहि प्रकार धन होय।।

अर्थात् "जब लोगों का मन लोभी हो जाता है तो उसका मन विषय-भोगों में रत हो जाता है और वह सब भूल जाता है और इसी चिन्ता

में लगा रहता है कि किस प्रकार धन बढ़े।''

रामचरित मानस में लोभी, लंपट और लालचियों की मानसिकता का उल्लेख करते हुए कहा गया है–

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा।।

अर्थात् ''जो लोभी, लंपट और लालची होते हैं, वे पराए धन और पराई स्त्री की ताक में रहते हैं।''

रामचरित मानस के उत्तरकाण्ड में असन्त अर्थात् दुष्ट लोगों के कई अवगुणों और कुलक्षणों का उल्लेख किया गया है। उनमें से 'लोभ' अवगुण का होना भी प्रमुख रूप से बताया गया है[1] और कहा गया है कि दुष्टों का लोभ ही ओढ़ना और लोभ ही बिछौना होता है।[2]

तृष्णा (मन की प्यास)

वस्तुतः तृष्णा ही है जो मनुष्य को लोभ के फ़न्दे में फँसाती है और फिर व्यक्ति इतना इसके क़ाबू में आ जाता है कि वह इसका दास बनकर रह जाता है। लोभी व्यक्ति धन-संग्रह जैसे-जैसे करता जाता है, उसकी तृष्णा और धन की चाहत वैसे-वैसे ही और अधिक बढ़ती जाती है। एक बार माण्डव्य मुनि ने विदेहराज जनक से धन की तृष्णा और चाहत के सम्बन्ध में प्रश्न किया तो विदेहराज ने कहा–

यथैव श्रृंगम् गोः काले वर्धमानस्य वर्धते।
तथैव तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते।।

(संक्षि॰ महाभा॰ 13/55/6)

अर्थात् ''जैसे समयानुसार बढ़ते हुए बछड़े का सींग भी उसके शरीर के साथ ही बढ़ता जाता है, वैसे ही बढ़ते हुए धन के साथ मनुष्य की तृष्णा (प्यास व चाहत) भी बढ़ती जाती है।''

1. काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन। (39/3) अर्थात् वे काम, क्रोध, मद और लोभ के परायण तथा निर्दयी, कपटी, कुटिल और पापों के घर होते हैं।
2. लोभइ ओढ़न लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रासन। (उ.का॰ 40/1)

यानी मनुष्य के संसाधनों और धन-दौलत में जितनी अधिक वृद्धि होती जाती है, उसके मन में धन की प्यास और तृष्णा वैसे-वैसे और अधिक बढ़ती जाती है। भौतिकवादी मनुष्य स्वाभाविक रूप से ही ऐसा होता है कि उसमें धन की प्यास (तृष्णा) और भूख किसी भी तरह मिटती ही नहीं। इस्लाम के पैग़म्बर ने कहा–

> "अगर आदम की सन्तान (अर्थात् मनुष्य) के पास माल से भरी दो घ़ाटियाँ भी हों तो उसे तीसरी की इच्छा और तलाश होगी। आदम की सन्तान के पेट को सिर्फ़ मिट्टी ही भर सकती है।"
> (हदीस : बुख़ारी-6098, मुस्लिम-1008)

एक बार और फ़रमाया–

> "अगर मनुष्य को सोने से भरी एक घाटी दे दी जाए तो वह दूसरी की इच्छा करेगा और अगर उसे दूसरी भी मिल जाए तो वह तीसरी का इच्छुक होगा।" (हदीस : बुख़ारी-6100; मुस्लिम-1048)

जब तृष्णा और माल-दौलत की प्यास मनुष्य को घेर लेती है तो फिर मनुष्य को यह सोचने का अवसर ही नहीं मिलता कि वह नैतिक दृष्टि से कितना तबाह व बरबाद हो रहा है। सम्भवतः इसी कारण इस तृष्णा (लोभ और प्यास) की बड़ी निन्दा की गई है। महाभारत में इसको सबसे बढ़कर पापिष्ठ और अधर्म में प्रवृत्त करनेवाली कहा गया है। कहा–

तृष्णा हि सर्वपापिष्ठा नित्योद्वेगकरी स्मृता।
अधर्म बहुला चैव घोरा पापानुबंधनी।।
(महाभा॰ 3/2/35)

अर्थात् "तृष्णा सबसे बढ़कर पापिष्ठ (पाप में प्रवृत्त करनेवाली) तथा नित्य उद्वेग करनेवाली होती है। उसके द्वारा प्रायः अधर्म ही होता है। वह अत्यन्त भयंकर पाप-बन्धन में डालनेवाली होती है।"

एक और स्थान पर कहा गया–

अनाद्यन्ता तु सा तृष्णा अन्तर्देहगता नृणाम्।
विनाशयति भूतानि अयोनिज इवानलः।।
(महाभा॰ 3/2/37)

"यह तृष्णा यद्यपि मनुष्यों के शरीर के भीतर ही रहती है, तो भी इसका कहीं आदि-अन्त नहीं है। लोहे के पिण्ड की आग के समान यह तृष्णा प्राणियों का विनाश कर देती है।"

धन के भूखे को सुख नहीं

धन के लोभ और उसके प्रति कभी न मिटनेवाली प्यास और तृष्णा में ग्रस्त व्यक्ति यह सोचता है कि धन की अधिकता से उसे सुख प्राप्त होगा, लेकिन ऐसा नहीं होता, क्योंकि जो धन की तृष्णा में फँस चुका होता है, उसकी तृप्ति कभी नहीं होती और तृप्ति न होने से मन सदैव बेचैन रहता है। क्योंकि मन की बेचैनी ही दुख का मूल कारण होती है, इसी लिए वह सब कुछ पाकर भी सदैव उद्विग्न दशा में रहता है और जीवन-कल्याण के पथ से कोसों दूर रह जाता है। वह सुकून और लक्ष्य कभी पाता नहीं। अतः वनपर्व में कहा गया है—

अर्थ एव हि केषांचिदनर्थं भजते नृणाम्।
अर्थश्रेयसि चासक्तो न श्रेयो विन्दते नरः।।

(2/41)

अर्थात् "कितने ही मनुष्यों के लिए अर्थ ही अनर्थ का कारण बन जाता है, क्योंकि अर्थ द्वारा सिद्ध होनेवाले श्रेय (सांसारिक भोग) में आसक्त मनुष्य वास्तविक कल्याण को नहीं प्राप्त होता।"

धन की लालसा में पड़े धन के लोभी के सम्बन्ध में पं॰ नारायण कहते हैं—

लोभेन बुद्धिश्चलति लोभो जनयते तृषाम्।
तृषाऽऽर्त्तो दुःखमाप्नोति परत्रेह च मानवः।।

(हितोपदेश 1/154)

अर्थात् "लोभ से मनुष्य की बुद्धि चंचल हो जाती है और लोभ से मनुष्य को तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से ही मनुष्य इस लोक में तथा परलोक में भी दुख पाता है।"

और कहा—

धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टोऽनियतात्माऽजितेन्द्रियः।
सर्वा एवाऽऽपदस्तस्थ यस्य तुष्टं न मानसम्।।

अर्थात् "जो मनुष्य धन का लोभी, असन्तोषी, चंचल चित्तवाला, इन्द्रियों के वश में रहनेवाला है तथा जिसका मन सन्तुष्ट नहीं है, ऐसे मनुष्य को सब प्रकार की आपत्तियाँ घेर लेती हैं।"

ये उपरोक्त उल्लेख सिद्धांततः हैं। हम व्यावहारिक भी देख सकते हैं कि जिस व्यक्ति को ईश्वर ने सबकुछ दे रखा है, इसके उपरांत भी उसे ऐसी-ऐसी धोखा-धड़ी और हेरा-फेरी करते देख सकते हैं, जैसे कोई अभावग्रस्त दरिद्र व्यक्ति अपना पेट भरने के लिए चोरी कर रहा हो। बहुत से कर्मचारियों को इतना अधिक वेतन मिल रहा होता हैं कि वेतन-राशि कई हज़ारों और लाखों में होती है, इसके उपरांत भी उन्हें बेईमानी करते और रिश्वत लेते देखा जा सकता है। यह धन की उनपर तृष्णा और लोभ के प्रभावी होने का ही कारण है।

ये भी लोभ के ही कुत्सित रूप हैं

जब कोई व्यक्ति रिश्वत लेता है, ग़लत बिल बनाकर बिल पास करा लेता है, हिसाब-किताब में हेरा-फेरी करता है, झूठ बोलकर दलाली खाता है, लोगों को पैसे देकर ब्याज लेता है, अगर कोई पदाधिकारी है तो अनावश्यक योजनाएँ बनाता और उन्हें पास कराता है और आवश्यकता से अधिक ख़र्च दिखाकर योजना के बहाने पैसे कमाता है, तो ऐसे व्यक्ति के प्रति समझना चाहिए कि वह लोभी है और उसपर लोभ प्रभावी है और वह झूठ का कारोबार कर रहा है। इसी प्रकार वह व्यक्ति जो किसी भी कन्या से उसकी योग्यता और चरित्र के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी धन-सम्पत्ति के आधार पर रिश्ता करता है, तो समझ लेना चाहिए कि वह भी लोभी है और मानव-समाज में निकृष्ट श्रेणी का व्यक्ति है। बहुओं को दहेज के ताने देकर प्रताड़ित करनेवाला वर-पक्ष और इसी प्रकार ऐसे अधम व ज़लील कन्या-पक्ष भी कि जो अपनी कन्या के माध्यम से वर-पक्ष या दामाद का आर्थिक-शोषण करते हैं; वे भी इसी श्रेणी में आते हैं। यद्यपि भारतीय समाज के बहुत से

प्रतिष्ठित और स्वाभिमानी व कुलीन परिवारों या समाज में यह परम्परा थी और आज भी है कि कन्या के माध्यम से वर-पक्ष या दामाद का आर्थिक शोषण करना या उससे कोई चीज़ लेना तो दूर की बात, वे कन्या के ससुराल में एक गिलास पानी का पीना भी अपने स्वाभिमान के विरुद्ध और अपने ऊपर हराम और अवैध समझते हैं और अगर कभी विवशतः कुछ खाना-पीना पड़ भी गया तो वे कन्या या दामाद के हाथ में इतना धन या पैसा रखकर ग्रहण करते हैं कि वह उस खाने-पीने से कई गुना अधिक होता है, जो बेटी-दामाद के लिए दान भी होता है और बेटी की शान बढ़ाने और शान्ति का साधन भी।

इसी प्रकार एक के बदले दस मिलने की उम्मीद पर सट्टेबाज़ी करना या सट्टा व जुआ का खेलना, किसी ग़रीब की मदद करके उसपर एहसान जताना और अनुचित लाभ उठाना यह सब भी लोभी होने के ही लक्षण हैं और लोभ के कुत्सित रूप।

अवैध धन से धर्म नहीं

कुछ लोगों की यह सोच होती है कि वे अधर्म रीति से धन कमाकर धर्म के कार्य भी तो करते हैं। ग़रीबों और मुहताजों की मदद करते हैं, जो धर्मादेशानुसार ही है, तो उन्हें जान लेना चाहिए कि अधर्म रीति से कमाई हुई दौलत से धर्म के कार्य का कोई फल नहीं मिलता। महाभारत की दृष्टि में जब साधारणतः धर्मार्थ धनोपार्जन की इच्छा भी वैध नहीं, फिर अवैध रीति से कमाई गई दौलत की ख़राबी का अनुमान लगाया जा सकता है। वनपर्व में है—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्।।

(2/49)

अर्थात्, "जो धर्म करने के लिए धनोपार्जन की इच्छा करता है, उसका धन की इच्छा न करना ही अच्छा है। कीचड़ लगाकर धोने की अपेक्षा मनुष्यों के लिए उसका स्पर्श न करना ही श्रेष्ठ है।"

भागवत महापुराण (11/17/51) में इसी लिए कहा गया है कि न्यायतः उपार्जित शुक्ल-धन से ही विधि-विधानपूर्वक यज्ञ करे।

उद्योग पर्व (39/66) में और स्पष्ट कर दिया गया कि—

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात्।।

अर्थात् "जो अधर्म के द्वारा कमाए हुए धन से पारलौकिक कर्म करता है, वह मरने के पश्चात् उसके फल को नहीं पाता, क्योंकि उसका धन बुरे रास्ते से आया होता है।"

अतः हर मनुष्य को चाहिए कि अधर्म एवं कुमार्ग से कमाई गई हर दौलत का परित्याग करे।

पाप पीछा करता है

अगर हमने किसी का दिल दुखाकर या छल-कपट से या किसी भी पाप की रीति से धन एकत्र करके ऐशो-आराम का एहसास करते हैं और देखते हैं कि हमारा पाप (बेईमानी, छल, कपट, धोखा) हमारे लिए और अधिक बढ़ोत्तरी का कारण दिखाई देता है, तो यह हमारी भूल है। अगर हमारा पाप हमारा पीछा करता हुआ हमारी पकड़ नहीं कर सका और न ही हमें दण्ड दे सका, तो इसका मतलब यह कदापि नहीं कि हमारा पाप हमें भुला दिया। नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं है। महाभारत से ज्ञात होता है कि अगर पापी का पाप उसके जीवन में ज़ाहिर नहीं हुआ, तो बेटा पर और बेटे पर नहीं तो नाती-पोतों पर अवश्य ज़ाहिर होकर रहता है। कहा गया—

पुत्रेषु वा नप्तृषु वा न चेदात्मनि पश्यति।
फलत्येव ध्रुवं पापं गुरु भुक्तमिवोदरे।।

(महाभा॰ सभा॰ 80/3)

अर्थात् "यदि वह (पाप से उपार्जित द्रव्य का) दुष्परिणाम अपने ऊपर नहीं दिखाई देता तो उन अन्याय से उपार्जित दृव्य का उपभोग करने के कारण पुत्रों अथवा नाती-पोतों पर अवश्य प्रकट होता है। जैसे खाया हुआ

गरिष्ट अन्न तुरन्त नहीं तो कुछ देर बाद अवश्य ही पेट में उपद्रव करता है, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी निश्चय ही अपना फल देता है।"

अतः मनुष्य को चाहिए कि यदि वह अपनी सन्तान और परिवार से प्रेम करता है तो उनके सुख व आराम की नींव चोरी, बेईमानी, धोखा व छल यानी किसी भी पाप की रीति से उपार्जित धन पर न रखे, बल्कि ईमानदारी और सच्चाई के आधार पर उनको सुख-आराम पहुँचाने का प्रयास करे। अगर ईमानदारी की रीति से कमाकर उन्हें आराम नहीं पहुँचा पा रहा है, तो सब्र करे। यह इससे उत्तम है कि बेईमानी से उपार्जित अंगारों से उनका पेट भरा जाए।

धन ही सब कुछ नहीं

मनुष्य अधिक-से-अधिक धन का भण्डार क्यों करना चाहता है? वह समझता है कि जीवन की सफलता सांसारिक भोग-विलास की सामग्री की प्रचुरता एवं धन का एकत्र कर लेना है। मनुष्य की यह सोच मात्र एक भ्रम व मिथ्या है, झूठ है। यह भौतिकवादी और इहलौकिकवादियों की मानसिकता होती है, जिनकी मानसिकता को महाराज भर्तृहरि जी इस प्रकार चित्रण करते हैं, वे कहते हैं कि उनकी सोच और कामना यह होती है कि—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छताच्छीलं।
शैल तटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना।।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं।
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे।।
(नीतिशतकम्-39)

"जाति पाताल को चली जाए, गुणों का समुदाय उससे भी नीचे चला जाए, सदाचार पर्वत के किनारे से गिरकर चूर-चूर हो जाए, शत्रु के समान शौर्य पर वज्रपात हो जाए। इस प्रकार ये सभी भले ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँ, किन्तु केवल धन हमारे पास हो, जिसके बिना ये सभी गुण तृण (घास, तिनका) के समान नगण्य हो जाते हैं।"

धन के पुजारियों और भौतिकवादियों का आचरण भी यही होता है कि

जिसे देखते हैं कि यह एक धनवान और पैसावाला है, तो उसको सरआँखों बिठाते हैं और इतना ही नहीं, बल्कि उसके क़दम चाटते नज़र आते हैं। वहीं यदि कोई कितना ही सुआचरणधारी, चरित्रवान, गुणी और नीतिपरायण क्यों न हो, लेकिन हो ग़रीब, निर्धन तो उसके प्रति इनका व्यवहार प्रायः उपेक्षा और अपमान का ही होता है। ऐसे लोगों के लोक-व्यवहार को ही देखकर श्री भर्तृहरि जी कहते हैं–

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,
स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः,
सर्वे गुणः काञ्चनमाश्रयन्ति।।
(नीतिशतकम्-41)

अर्थात् "इस संसार में जिसके पास धन है, वही श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, वही बुद्धिमान, वही शास्त्रों का ज्ञानी, वही गुणों को जाननेवाला, वही बोलने में चतुर तथा वही पुरुष दर्शन के योग्य समझा जाता है। (इससे लगता है कि) सभी गुण धन में ही निवास करते हैं।"

इसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि और आचार्य चाणक्य भी धनवानों के प्रति उपरोक्त लोकाचार को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बांधवाः।
यस्यार्थाः स पुमांल्लोके यस्यार्थाः स च पंडितः।।
(रामायण, 6/83/35, चा॰नी॰ 6/5)

अर्थात् "जिस व्यक्ति के पास धन है, उसी के अधिक मित्र होते हैं, जिसके पास धन का संग्रह है, उसी के सब लोग भाई-बन्धु बनते हैं। जो धनवान है, उसी को आज के युग में विद्वान और सम्मानित व्यक्ति माना जाता है। धनवान व्यक्ति को ही विद्वान और ज्ञानवान भी समझा जाता है।"

और कहा–

यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान।

यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स गुणाधिकः।।

(वा॰रा॰ 6/83/36)

"जिसके यहाँ धन का भण्डार है, वह पराक्रमी कहा जाता है। जिसके पास धन की अधिकता है, वह बुद्धिमान माना जाता है। जिसके यहाँ अर्थ (धन) संग्रह है, वह महान भाग्यशाली कहलाता है तथा जिसके यहाँ धन-सम्पत्ति है, वह गुणों में भी बढ़ा-चढ़ा समझा जाता है।"

संभवतः धन के इसी महत्व को देखकर कुछ लोग धन और धनवानों के समक्ष अपने-आपको गुलाम की तरह पेश करते नज़र आते हैं और धनवान भी अपने-आपको सर्वशक्ति-सम्पन्न भूपति और प्रजापति ईश्वर की तरह पेश आते दिखाई देते हैं। हालाँकि धन-दौलत धूप-छाँव की तरह होती है, कभी इधर तो कभी उधर। कहा भी गया—

मा कुरू धनजनयौवन गर्वं।
हरति निमेषात्कालः सर्वं।।

अर्थात् "धन, शक्ति और यौवन पर गर्व मत करो, समय क्षण भर में इनको नष्ट कर देता है।"

अतः मनुष्य को चाहिए कि इनका अभिमान न करे। अन्यथा ईश्वर की मार जब अभिमानियों पर पड़ती है, तो वह सबकुछ छीन लेता है और जब वह धन उनसे छिन जाता है तो वे उपेक्षित होकर रह जाते हैं। भर्तृहरि जी कहते हैं—

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम।
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव।
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।।

(नी॰श॰-40)

अर्थात् "पहले की भाँति ही वे सब इन्द्रियाँ रहती हैं, वही नाम रहता है, वही अकुण्ठित बुद्धि रहती है, वही वाणी रहती है, किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि मनुष्य धन की गर्मी के समाप्त होने पर क्षणभर में ही

दूसरा-सा दिखाई पड़ता है।"

यानी मनुष्य वही होता है, बस धन उससे विदा हो गया होता है, अर्थात् वह ग़रीब हो गया होता है। अब उसे क्या देखते हैं कि कल तक जो स्वयंभू और ख़ुद को सर्वशक्तिमान समझकर ऐंठा-ऐंठा, लोगों में अपनी दबंगई दिखाता फिरता था, आज भीगी बिल्ली बना हुआ है। लोगों से कल तक जो अभिमान में आकर उनसे अभिवादन करना अपना अपमान समझता था, अब स्वयं अभिवादन करता और लोगों के सामने झुक रहा होता है। ऐसा बदलाव क्यों? क्योंकि उसके पास अब धन की गर्मी शेष नहीं रही।

वास्तव में धन की गर्मी मनुष्य को नैतिक पतन की ओर ले जाती है, जिसके कारण मनुष्य सामान्यतः कल्याण-पथ से विचलित होकर रह जाता है। महाभारत के वनपर्व में भी कहा गया है—

अर्थ एव हि केषांचिदनर्थं भजते नृणाम्।
अर्थश्रेयसि चासक्तो न श्रेयो विन्दते नरः।।

(2/41)

अर्थात् "कितने ही मनुष्यों के लिए अर्थ (धन) ही अनर्थ का कारण बन जाता है, क्योंकि अर्थ द्वारा सिद्ध होनेवाले श्रेय (सांसारिक भोग) में आसक्त मनुष्य वास्तविक कल्याण को नहीं प्राप्त होता।"

शुक्राचार्य जी धन का संग्रहण या भण्डार करने को बुरा नहीं समझते, लेकिन यह संग्रहण जनहिताय और सार्वजनिक होना चाहिए। वे केवल अपने लिए और स्त्री-पुत्रों के लिए धन संग्रह करने को नरक का कारण मानते हैं। उनका कथन है—

स्त्री पुत्रार्थं कृतो यश्च स्वोपभोगाय केवलम्।
नरकायैव स ज्ञेयो न परत्र सुखप्रदः।।

(शु॰नी॰ 4/4)

अर्थात् "जो कोश-संग्रह स्त्री-पुत्र के लिए तथा केवल अपने उपभोग के लिए किया जाता है, उसे केवल नरक देनेवाला ही समझना चाहिए, क्योंकि वह परलोक में सुखप्रद नहीं होता।"

महर्षि शुक्राचार्य जी सार्वजनिक हितों और जनकल्याण की दृष्टि से जो धन-संग्रहण के पक्ष में नज़र आते हैं तो इसमें भी वह ईमानदारी और श्रमपूर्वक धनोपार्जन को फलदायक समझते हैं। अन्यथा बेईमानी से की गई कमाई के बारे में उनका कहना है कि यदि वह धन अन्याय रीति से जमा किया गया, तो उसके पाप को उसे अवश्य भोगना होगा। कहा—

अन्यायेनाजितो यस्याद् येन तत्पापभाक् च सः।।

(शु॰नी॰ 4/5)

"जिसने अन्याय से धन उपार्जन किया है। अतः वह उस (अन्यायोपार्जन) के पाप का फल भोगनेवाला होता है।"

धनोपार्जन में नैतिकता एवं ईमानदारी

यह सत्य है कि इस जीवन में धन का एक अपना महत्व है। इससे किसी भी प्रकार इनकार नहीं किया जा सकता कि धन के बिना जीवन अत्यन्त संकटमय होता है, विशेषकर गृहस्थ जीवन। लेकिन धन को ही अपने जीवन का सब कुछ समझ लेना और उसके हासिल करने में नैतिकता, शिष्टाचार और चारित्रिक मर्यादाओं को ताक में रखकर येन-केन प्रकारेण मात्र धन एकत्र करने में लग जाना, जीवन को निरर्थक एवं असफल बनाना होता है। महर्षि शौनक का कहना है—

त्यजेत संचयांस्तस्मात्तज्जान क्लेशान सहेत च ।
न हि संचयवान् कश्चिद् दृश्यते निरुपद्रवः।
अतश्च धार्मिकैः पुं भिरनीहार्थः प्रशस्यते।।

(महाभा॰ 3/2/48)

"धन-संग्रह का त्याग करे और उसके त्याग से जो क्लेश हो उसे धैर्यपूर्वक सह ले। जिनके पास धन का संग्रह है, ऐसा कोई भी मनुष्य उपद्रवरहित नहीं देखा जाता है। अतः धर्मात्मा पुरुष उसी धन की प्रशंसा करते हैं, जो दैवेच्छा से न्यायपूर्वक स्वतः प्राप्त हो गया हो।"

महर्षि शौनक जो मर्हिष कात्यायन और आश्वलायन के गुरु, संस्कृत वैयाकरण तथा ऋग्वेद प्रतिशाख्य, बृहद्देवता, चरणव्यूह तथा ऋग्वेद की अनुक्रमणिकाओं के रचयिता हैं—इस बात को मानते हैं कि जिसके पास धन होता है, वह उपद्रवी होता है और उपद्रव मनुष्य को नैतिक स्तर से इतना पतित कर देता है कि कभी-कभी व्यक्ति पशुत्व की साकार मूर्ति प्रतीत होने लगता है।

महर्षि के इन शब्दों से कि "जो दैवेच्छा से न्यायपूर्वक स्वतः प्राप्त हो जाए, धर्मात्मा उसी की प्रशंसा करते हैं।"—से अभिप्राय यह नहीं कि व्यक्ति आलसी बनकर, बिना कोई मेहनत किए धन मिलने की आस में लगा बैठा रहे, बल्कि 'न्यायपूर्वक' शब्द से ज्ञात होता है कि व्यक्ति को नैतिक और मानवीय सभी मर्यादाओं का ध्यान रखते हुए धन कमाने के सभी वैध तरीक़े अपनाने होंगे और इसी न्याय-रीति से जो धन प्राप्त होगा वही सुखदायक एवं वैध धन होगा।

इस्लाम भी हर नैतिक मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए ईमानदारी के साथ की गई कमाई की बड़ी प्रशंसा करता है। एक बार इस्लाम के पैग़म्बर (सल्ल॰) से पूछा गया कि कौन-सी कमाई सबसे उत्तम (एवं प्रशंसनीय) है? तो आपने कहा, "मनुष्य का अपने हाथ से काम करके कमाना और प्रत्येक ईमानदारी का सौदा।" (सन्दर्भ : धनोपार्जन, हदीस सौरभ, भाग-4, पृ॰ 37)

इसी प्रकार एक बार पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"उस व्यक्ति से अच्छा खाना किसी ने नहीं खाया जो अपने हाथ से काम करके खाए।" (हदीस : बुख़ारी)

प्रशंसनीय धनोपार्जन

धर्मशास्त्रों और विद्वानों ने वैध और जाइज़ कमाई एवं वैध रीति से धनोपार्जन की बड़ी प्रशंसा की है और इसी के साथ-साथ उसकी भी बड़ी प्रशंसा एवं बड़ाई की है जो पूरी ईमानदारी और मेहनत के साथ धनोपार्जन यानी कमाई करता है। हदीसशास्त्र में है कि एक बार पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के पास से एक व्यक्ति गुज़रा, जो मेहनत-मज़दूरी के लिए जा रहा

था। आप (सल्ल॰) के पास बैठे हुए लोगों ने उसकी मेहनत और भाग-दौड़ देखकर कहा कि ऐ अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल॰)! यदि इस व्यक्ति की दिलचस्पी और इसकी भाग-दौड़ अल्लाह की राह में होती तो कितना अच्छा होता! यह सुनकर आप (सल्ल॰) ने कहा, यदि वह अपने छोटे-छोटे बच्चों की परवरिश के लिए भाग-दौड़ कर रहा है तो यह कोशिश भी अल्लाह की राह में ही गिनी जाएगी और यदि वह बूढ़े माँ-बाप की परवरिश के लिए दौड़-धूप कर रहा है तो यह भी अल्लाह के लिए किया गया काम समझा जाएगा और यदि वह अपने निजी और व्यक्तिगत काम के लिए दौड़-धूप कर रहा है और उद्‌देश्य यह है कि लोगों के सामने हाथ न फैलाना पड़े तो यह भी अल्लाह के लिए किया गया काम समझा जाएगा। लेकिन यदि इस कोशिश का उद्‌देश्य यह हो कि लोगों पर अपने माल-दौलत की बरतरी जताए और लोगों के सामने अपनी ख़ुशहाली की नुमाइश करे तो उसके ये सारे प्रयास और मेहनत शैतान की राह में गिने जाएँगे। (हदीस : बैहक़ी)

महर्षि शुक्राचार्य जी भी कुटुम्ब के भरण-पोषण हेतु वैध रीति से प्रयत्न एवं प्रयास करनेवाले की प्रशंसा करते हैं और जो अपने कुटुम्ब के प्रति उदासीन रहता है, उनके पालन-पोषण का प्रयास नहीं करता उसके सर्वगुण सम्पन्न होने के उपरान्त भी उसे मरे हुए व्यक्ति के समान मानते हैं । शुक्रनीति में है—

कुटुम्बभरणार्थेषु यत्नवान्न भवेच्च यः।।
तस्य सर्वगुणैः किन्तु जीवन्नेव मृतश्च सः ।
(3/126-127)

अर्थात् "जो कुटुम्ब-पालन के विषय में प्रयत्नशील नहीं होता है, वह सर्वगुण-सम्पन्न होते हुए भी जीवित रहकर मरे हुए के समान है अर्थात् उसका जीवन व्यर्थ है।"

सद्‌गुरु एवं महात्मा कबीर भी ईश्वर से बस इतना धन चाहते हैं, जिसमें कुटुम्ब का भरण-पोषण एवं अतिथि का सत्कार हो सके। श्री कबीर जी के वचन हैं—

साईं इतना दीजिए जामे कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ न साधू भूखा जाए।।
(कबीर बीजक)

सन्तोष ही परम धन है

संसार के लगभग सभी महापुरुषों और शास्त्रकारों ने 'सन्तुष्टि परमं धनं (सन्तोष परम धन है) की ही शिक्षा दी और अनावश्यक धन-संग्रहण एवं धन की प्यास व लोभ से बचने के लिए कहा है।

भीष्म जी के वचन हैं—

'न वृथा साधयेद् धनम्' (महाभा॰ 13/47/22) अर्थात् धन का व्यर्थ संग्रह न करे।

और कहा कि यदि धन-संग्रह करने की आवश्यकता आ जाए तो धर्म का चिंतन एवं अनुस्मरण करते हुए ही धन का उपार्जन और संग्रह करे। (अनुशा॰ 47/26)

उद्योगपर्व में नीतिज्ञ विदुर जी के वचन हैं कि यदि धन अधर्म से यानी अनुचित रीति से प्राप्त हो जाए तो उसे आसक्तिहीन होकर तुरन्त त्याग देना चाहिए। इससे त्यागी-पुरुष को ऐसा ही सुख प्राप्त होता है, जैसे साँप अपनी केंचुली को त्याग कर सुखी होता है। कहा—

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः संत्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णं त्वचं सर्प इवावमुच्य।।
(40/2)

"जो अधर्म से उपार्जित महान् धनराशि को भी उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना ही त्याग देता है, वह जैसे साँप अपनी पुरानी केंचुली को छोड़ता है, उसी प्रकार दुखों से युक्त हो सुखपूर्वक शयन करता है।"

और कहा गया—

यदर्थं शक्नुयात् प्राप्तं तेन तुष्येत पण्डितः।।
(शाति॰ 69/24)

"जो धन (नैतिक मर्यादा का पालन करते हुए) प्राप्त किया जा सके उसी से विद्वानों को सन्तुष्ट होना चाहिए।" क्योंकि–

'तोष परोहि लाभः' अर्थात् सन्तोष ही सबसे बड़ा लाभ यानी धन है।

इस्लाम में लोभ से बचने के लिए ईश्वर की शरण बार-बार माँगी गई है और सन्तोष एवं सब्र से काम लेने की सख़्त ताकीद की गई है। बिना ज़रूरत गिन-गिनकर धन जमा करने से मना किया गया है।

इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) अनावश्यक धन के संग्रहण से इस तरह बचते थे, जैसा कि आग से बचा जाए। आप (सल्ल॰) के साथी अबू-हुरैरा (रज़ि॰) कहते हैं कि पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा–

> "अगर मेरे पास उहुद पर्वत के बराबर भी सोना हो तो मेरी प्रसन्नता की चीज़ यही होगी कि मुझ पर तीन रातें भी न बीतें कि मेरे पास उसमें से कुछ शेष हो, सिवाय इसके कि किसी का ऋण चुकाने के लिए मैं उसमें से कुछ रोक लूँ।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

अर्थात् पैग़म्बर (सल्ल॰) की कामना धन-संग्रह के सन्दर्भ में बस इतनी है कि उनपर यदि किसी का क़र्ज़ है तो उसे अदा करने के लिए जमा कर लें; इसके अतिरिक्त उन्हें धन की कोई चाहत नहीं।

आधिक्य धन की कामना का नियंत्रण अनिवार्य

धन की अधिकता की चाहत मनुष्य में फ़ितरी तौर से पाई जाती है। इस्लाम के पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा–

> "अगर आदम की सन्तान (अर्थात् मनुष्य) को सोने से भरी एक घाटी दे दी जाए तो वह दूसरी (घाटी) की इच्छा करेगा और यदि उसे दूसरी भी मिल जाए, तो वह तीसरी की इच्छा करने लग जाएगा। आदम की सन्तान अर्थात् मनुष्य के पेट को तो मिट्टी ही भर सकती है (यानी धन की चाहत मौत के बाद ही ख़त्म हो सकती है)।" (हदीस : बुख़ारी)

दुनिया के तमाम महापुरुषों, विशेषकर इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) ने मनुष्य की इस स्वाभाविक इच्छा की उपेक्षा नहीं की, लेकिन कई प्रावधानों के साथ इसे नियन्त्रित करने का पूर्ण प्रयास किया है। धन जमा करने के लिए सबसे पहली शर्त यह रखी कि माल-दौलत हासिल करने में झूठ, फ़रेब, धोखा, ठगी, चोरी और जुआ, शराब और सूदी कारोबार को कदापि न अपनाया जाए और न कोई ऐसा काम किया जाए जिसमें किसी व्यक्ति का हक़ मारा जा रहा हो। इसके साथ ही एक निश्चित मात्रा में धन-संग्रह के बाद संग्रहित धन पर ग़रीबों, मुहताजों में वितरित करने हेतु अनिवार्य देय निश्चित कर दिया, जिसे ज़कात के नाम से जाना जाता है। इस देय से इनकार करना धार्मिक एवं आर्थिक अपराध घोषित कर दिया है। इसके साथ ही कहा कि धन-दौलत हासिल करने के लिए दीवानापन न अपनाया जाए। कहा—

> "दीनार और दिरहम और क़तीफ़ा और ख़मीसा का बन्दा हलाक हो। अगर उसे ये चीज़ें मिलती हैं तो वह प्रसन्न हो जाता है और अगर नहीं मिलती हैं तो प्रसन्न नहीं होता।" (हदीस : बुख़ारी)

दीनार और दिरहम सोने-चाँदी के सिक्के थे और क़तीफ़ा व ख़मीसा रेशमी और ऊन के क़ीमती कपड़े हैं। इनके उल्लेख से अभिप्राय यह है कि अधिक-से-अधिक रुपये-पैसे और क़ीमती सामानों का जो ग़ुलाम होकर रह जाते हैं और इन्हीं के जमा करने में लगे रहते हैं, वे वास्तव में पारलौकिक दृष्टि से तबाह होते हैं।

पैग़म्बर (सल्ल॰) ने एक बार कहा—

> "निस्सन्देह यह धन हरा, रुचिकर, ताज़ा और स्वादिष्ट है। अतः जो व्यक्ति इसे वैध रीति से प्राप्त करे और वैध कामों में ख़र्च करे तो यह धन सबसे अच्छा सहायक है और जो व्यक्ति इसको अवैध रीति से प्राप्त करे तो वह उस व्यक्ति की तरह होता है कि जो खाता है और अघाता नहीं (अर्थात् तृष्णा सदैव बनी रहती है) और यह धन क़ियामत (प्रलय) के दिन उसका साक्षी होगा।"
>
> (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

एक अवसर पर पैग़म्बर (सल्ल०) ने छः चीज़ों के बारे में कहा और बताया कि उनमें से तीन मुक्ति प्रदान करनेवाली और तीन विनाश कर देनेवाली हैं। विनाश कर देनेवाली चीज़ों में लोभ और कृपणता (कंजूसी) को बताया कि यह उन चीज़ों में से है कि अपने गुलामों को विनष्ट करके रख देती है। (हदीस : अल-बैहक़ी फ़ी शोबिल-ईमान)

इसी प्रकार क़ुरआन ने कहा—

"और जिन्होंने अपने मन को लोभ और कृपणता से बचा लिया, वही लोग सफलता पानेवाले हैं।"

(सूरा-59 हश्र, आयत-9; सूरा-64 तग़ाबुन, आयत-16)

लोभ और बाइबल

बाइबल भी धन और धन के लोभ के सम्बन्ध में चौकन्ना रहने को कहती है। सचेत करते हुए कहा गया—

"चौकस रहो और हर प्रकार के लोभ से अपने-आपको बचाए रखो, क्योंकि किसी का जीवन उसकी सम्पत्ति (धन) की बहुतायत (अधिकता) से नहीं होता।" (बाइबल, लूका० 12/15)

अर्थात् कुछ लोग जो यह समझते हैं कि धन का बहुत ज़्यादा होना जीवन के सफल हो जाने का लक्षण है, यह सत्य नहीं है और न ही यह जीवन है। बाइबल की दृष्टि में ऐसे लोग जिनका मक़सद सिर्फ़ धन-दौलत को अधिक-से-अधिक हासिल करने का होता है, वे जीवनहीन हैं।

धन के लोभियों एवं धन जमा करनेवालों को बाइबल में मूर्तिपूजकों के बराबर ठहराते हुए कहा गया—

"किसी व्यभिचारी, या अशुद्ध जन या लोभी मनुष्य की जो मूर्तिपूजक के बराबर है, मसीह और परमेश्वर के राज्य में मीरास नहीं।" (इफ़िसियो 5/5, कुलुस्सियो० 3/5)

बाइबल में लोभ-लालच से बचने की इतनी ताकीद की गई है कि अपने बीच इसकी चर्चा करने से भी रोका गया है। कहा गया—

"जैसा पवित्र लोगों के योग्य है, वैसा तुममें व्यभिचार और किसी

प्रकार के अशुद्ध काम या लोभ की चर्चा तक न हो।"

(इफ़िसियो 5/3)

लोभ का ही एक भयानक रूप है : चोरी और बेईमानी

बाइबल की पुस्तक निर्गमन में है कि मूसा (अलैहि॰) को दस आदेश दिए गए थे, उनमें से एक यह भी आदेश था–

"तू किसी के घर का लालच न करना, न तो किसी स्त्री का लालच करना और न किसी के दास-दासी या बैल-गदहे का, न किसी की किसी वस्तु का लालच करना।" (20/17)

इसके साथ ही एक और आदेश दिया गया था–

"तू चोरी न करना।" (20/15)

इस आदेश में 'चोरी न करने' का आदेश देकर हर वह काम जिसमें छल, फ़रेब, झूठ बेईमानी होती हो प्रतिबन्धित कर दिया गया। कुछ लोग लोभ-लालच में आकर सार्वजनिक कामों में कमीशन खाते हैं। वास्तविक बिल व लागत और भुगतान की रक़म कुछ और होती है, लेकिन जो बिल पास किया जाता है वह कई गुना अधिक का होता है। यह चोरी लोभ के कारण ही लोग करते हैं, जो शास्त्रों की दृष्टि में हराम (अवैध) और अत्यन्त निकृष्ट व अमानवीय कुकृत्य है।

इस्लाम के पैग़म्बर (सल्ल॰) 'चोरी के प्रति लोगों को सदैव सचेत रहने को कहते थे। एक बार आप (सल्ल॰) के आस-पास लोगों की भीड़ जमा थी। आप (सल्ल॰) लोगों से बैअत (सत्य-पथ पर चलने के लिए प्रतिज्ञापूर्ण वचन) ले रहे थे। बैअत में कई वचनों के साथ मुख्यतः यह वचन भी ले रहे थे कि वे अल्लाह के साथ किसी को शरीक नहीं करेंगे और न चोरी करेंगे।

(दे॰ हदीस : बुख़ारी-18, भाग-1)

क़ुरआन में चोर के लिए दण्ड-विधान यह दिया गया–

"चोर चाहे स्त्री हो या पुरुष दोनों के हाथ काट दो। यह उनकी कमाई का बदला है और ईश्वर की ओर से शिक्षाप्रद दण्ड।"

(क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-38)

हिन्दू धर्मशास्त्रों ने भी चोर के प्रति अत्यन्त कठोर दण्ड की नीति अपनाई है। सेंध लगानेवालों को मनु महाराज ने शूली की सज़ा का विधान दिया है। (दे॰ मनु॰ 9/276) पाकेटमारी करनेवालों या किसी की वह वस्तु जो ले जा रहा हो, चुपचाप चुरा लेनेवालों को दण्ड का विधान यह किया कि पहली बार पकड़े जाने पर चोर की उंगुलियाँ और अंगूठा काट दिया जाए, दूसरी बार पकड़े जाने पर हाथ-पाँव काट दिया जाए और तीसरी बार यही अपराध किए जाने पर मृत्यु-दण्ड दे दिया जाए। (दे॰ मनु॰ 7/277, याज्ञ॰ 2/274, विष्णु॰ ध॰सू॰ 5/166)

इसी प्रकार धर्मशास्त्रों में उन्हें भी चोर की तरह दण्ड देने का विधान किया गया है, जो चोरी करने में चोर की मदद करते हैं। (दे॰ गौतम॰ 12/46-48, मनु॰ 9/271, कात्या॰ 827, याज्ञ॰ 2/286)

लोभ और नास्तिकता

लोभ वास्तव में उन लोगों में अधिक पाया जाता है, जिनके अन्दर चेतन या अचेतन रूप में परलोक पर विश्वास नहीं होता। उनके अन्दर इस विश्वास की मज़बूती पाई जाती है कि 'बाबर बा ऐश कोश कि आलम दोबारा नीस्त' (अर्थात् ऐ बाबर! जी भर के ऐश व मज़े उड़ा ले, क्योंकि यह दुनिया दोबारा हाथ नहीं आएगी)? यही जीवन मात्र है; जिसे चोरी, बेईमानी, छल, कपट किसी भी तरह सुख-सामग्री हासिल करके भोग-विलास के साथ जी लिया जाए। इसमें नास्तिक तो स्पष्टतः सम्मिलित हैं ही, किन्तु इसमें व्यवहारतः प्रायः वे लोग भी शामिल हैं जो परलोक पर अपनी सुदृढ़ आस्था होने का दावा तो करते हैं, लेकिन कर्म से उसे झुठला रहे होते हैं। उनके व्यवहार और अमल से पता ही नहीं चलता कि उनको इस दुनिया से जाना भी है और मरने के बाद आनेवाली ज़िन्दगी में हिसाब भी देना है। क्योंकि नास्तिक को ईश्वर, जो उसे हर जगह देख रहा होता है, पर विश्वास ही नहीं होता, अतः वह चोरी, बेईमानी में झिझक नहीं करता। इसी लिए महाभारत (उद्यो॰ 39/73) में कहा गया है कि नास्तिकों पर विश्वास नहीं करना चाहिए और कहा—भिद्यस्व नित्यं कुहकोद्यतैः (वन॰ 234/9)—"जो छल-कपट करने के लिए तत्पर रहते हैं, उनसे सदैव दूर रहो।"

बाइबल में ऐसे लोगों को जो नैतिकता को भुलाकर और लोभ में आकर धन बटोरने और भोग-विलास की सामग्री जुटाने में लगे रहते हैं, उनके लिए एक बड़ा प्रेरक वृत्तान्त आया है—

"किसी धनवान की भूमि में बड़ी उपज हुई। तब वह अपने मन में विचार करने लगा कि मैं क्या करूँ? क्योंकि मेरे यहाँ जगह नहीं, जहाँ अपनी उपज इत्यादि रखूँ, और उसने कहा, "मैं यह करूँगा कि मैं अपनी बखारियाँ तोड़कर उनसे बड़ी बनाऊँगा और वहाँ अपना सब अन्न और सम्पत्ति रखूँगा। और अपने प्राण से कहूँगा कि प्राण! तेरे पास बहुत वर्षों के लिए बहुत सम्पत्ति रखी है। चैनकर, खा-पी, सुख से रह। परन्तु परमेश्वर ने उससे कहा, हे मूर्ख! इसी रात तेरा प्राण तुझसे ले लिया जाएगा; तब जो कुछ तूने इकट्ठा किया है, वह किसका होगा?' ऐसा ही वह मनुष्य भी है जो अपने लिए धन बटोरता है। परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में धनी नहीं।"

जो लोग येन-केन प्रकारेण धन एकत्र करके अपने को धनी दिखाना चाहते हैं और धन देखकर गर्वित होते हैं, उनके लिए उपरोक्त बाइबल की नसीहत हिला देनेवाली होनीं चाहिए; क्योंकि परलोक में उनसे अधिक दरिद्र और धनहीन कोई न होगा, जो नैतिक मर्यादाओं को तोड़कर लोभवश धन का संग्रहण करते हैं। कुछ लोग अनैतिक रूप से धन कमाकर दान-पुण्य और नेक कार्यों में ख़र्च करते हैं और फिर समझते हैं कि हमारे गुनाह धुल गए, लेकिन उनको जानना चाहिए कि बेईमानी की कमाई से किया गया भला काम ईश्वर के यहाँ स्वीकार है ही नहीं। क्योंकि जो बेईमानी, झूठ, फ़रेब आदि अनैतिक अवगुणों को अपनाकर उनपर अमल करता है, उसकी ईश्वरीय आस्था ख़त्म हो जाती है और जब ईश्वरीय आस्था समाप्त हो जाए तो यही वास्तविक अर्थ में नास्तिकता है। अतः उसमें धर्म रहता ही नहीं और धर्महीन का पारलौकिक सुख में कोई भाग नहीं। संजय युधिष्ठिर पर यही रहस्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

धर्मं कृत्वा कर्मणां तात मुख्यं महाप्रतापः सवितेव भाति।
हीनो हि धर्मेण महीमपीमां लब्ध्वा नरः सीदति पापबुद्धिः।।

(महाभा॰ 5/27/6)

अर्थात् "हे तात! धर्म, धन और काम तीनों में धर्म को प्रधान मानकर तदनुसार चलनेवाला पुरुष महाप्रतापी होकर सूर्य की भाँति चमक उठता है; परन्तु जो धर्म से हीन है और जिसकी बुद्धि पाप में लगी हुई है, वह मनुष्य इस सारी पृथ्वी को पाकर (यानी पृथ्वी पर की सम्पूर्ण सम्पत्ति पाकर) भी कष्ट ही भोगता है।"

अतः मनुष्य को चाहिए कि धन-दौलत कमाने और माल हासिल करने की सभी रीतियों में सच्चाई, सत्यनिष्ठा, शुचिता, नैतिकता, छलहीनता, अकुटिलता और पूरी ईमानदारी का ध्यान रखे और इनके माध्यम से जो प्राप्त हो जाए उसपर सन्तोष करे, कनाअत करे। क्योंकि कहा गया—'धनलुब्धो ह्यसन्तुष्टो नूनमात्मद्रोही भवति' अर्थात् धन का लोभी और असन्तोषी मनुष्य अपनी आत्मा के साथ भी द्रोह (विरोध) करनेवाला ही होता है। फिर आचार्य चाणक्य ने कहा—

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तिरेव च।
न च तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्।।
(चा॰नी॰ 7/3)

अर्थात् "सन्तोष के अमृत से तृप्त व्यक्तियों को जो सुख और शान्ति मिलती है, वह सुख-शान्ति धन के पीछे इधर-उधर भागनेवालों को नहीं मिलती।"

अतः धन जमा करके लोभवश जो सुख की आशा करते हैं, वास्तव में वे दुख का ही संग्रह करते होते हैं। इस तथ्य को मूर्ख लोग न समझने के कारण उनको कितना ही धन-प्राप्त हो जाए, लेकिन वे सन्तुष्ट कदापि नहीं होते, जबकि विद्वजन सदैव सन्तुष्ट रहते हैं, क्योंकि इस तथ्य को वे अच्छी तरह समझते हैं। महाभारत में कहा गया है—

असन्तोषपरा मूढाः सन्तोषं यान्ति पण्डिताः।।
(3/2/45)

"मूर्ख मनुष्य सदैव असन्तुष्ट रहते हैं और विद्वान पुरुष सन्तुष्ट रहते हैं।"

फिर—

अन्तो नास्ति पिपासायाः सन्तोषः परमं सुखम्।
तस्मात् सन्तोषमेवेह परं पश्यन्ति पण्डिताः।।
(3/2/46)

"धन की प्यास कभी बुझती नहीं है; अतः सन्तोष ही परम सुख है। इसी लिए ज्ञानीजन सन्तोष को ही सबसे उत्तम समझते हैं।"

क़ुरआन में कहा गया—

"अल-हाकुमुत्तकासुरु हत्ता ज़ुर्तुमुलमक़ाबिर"

अर्थात् "तुम लोगों को अधिक-से-अधिक और एक-दूसरे से बढ़कर दुनिया प्राप्त करने की धुन ने ग़फ़लत में डाल रखा है, यहाँ तक कि (इसी चिन्ता में कि कैसे हासिल करें) तुम क़ब्र (मौत) के किनारे तक पहुँच जाते हो।"

यानी दुनिया के भोग-विलास की सामग्री जुटाने और धन कमाने की धुन में इस तरह तल्लीन हो गए कि जीवन का क्या उद्देश्य है इसे ही भूल गए। सन्तोष और क़नाअत का क्या महत्व है? इसे भूल गए। अल्लाह के पैग़म्बर (सल्ल०) ने एक अवसर पर कहा—

"उस व्यक्ति ने सफलता को पा लिया, जिसने ईश्वरीय धर्म को अंगीकार कर लिया और साथ ही उसको आवश्यकतानुसार जो आजीविका मिली उसपर सन्तोष किया।"

(हदीस : मुस्नद अहमद-9278, मिश्कात-5165)

इसी प्रकार पैग़म्बर (सल्ल०) ने और कहा—

"उस व्यक्ति के लिए शुभ सूचना है, जिसको ईश्वरीय मार्ग पर चलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और जीवन में उसे जो आजीविका (वैधतः) प्राप्त हो सकी उसपर सन्तोष किया।"

(हदीस : मुस्नद अहमद-9263)

जो लोग सब्र और सन्तोष को छोड़कर धन की हवस और लोभ व

कृपणता में पड़े रहते हैं, उनको सचेत करते हुए पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा—

> “लोभ-लिप्सा से बचो, क्योंकि तुमसे पहले जो लोग गुज़रे हैं वे लोभ-लिप्सा ही के कारण तबाह हुए।” (हदीस : अबू-दाऊद)

लोभ : ईश्वरीय आस्था के विरुद्ध है

लोभ और कृपणता वास्तव में ईश्वर पर आस्था और विश्वास के विरुद्ध गुण हैं। क्योंकि ईश्वर पर विश्वास रखनेवाला व्यक्ति हर क़दम पर डरता होता है कि ईश्वर उसे देख रहा है। अतः वह चोरी, झूठ, बेईमानी, फ़रेब व अन्य सभी अनैतिक अवगुणों से बचता होता है, जिसके कारण उसके अन्दर लोभ जैसी विनाशक और परलोक को तबाह करनेवाली बुराई पैदा नहीं हो पाती। इसी लिए ईश्वर पर पूर्ण आस्था रखनेवाले के प्रति पैग़म्बर (सल्ल॰) ने कहा—

> “लोभ एवं कृपणता और ईश्वर पर सुदृढ़ आस्था किसी व्यक्ति के हृदय में कभी एकत्र नहीं होतीं।” (हदीस : नसई)

अर्थात् लोभ और कृपणता जिसके हृदय में होंगी, उसके हृदय में ईमान यानी ईश्वर पर सुदृढ़ आस्था एवं विश्वास नहीं होगा और इसके विपरीत जिसके हृदय में विश्वास और ईमान होगा, वहाँ लोभ और कृपणता नहीं होगी, बल्कि सन्तोष धैर्य, सब्र और दानशीलता पाई जाएगी।

लोभ का अन्त नहीं

जिसके अन्दर लोभ-लालच पैदा हो जाते हैं और व्यक्ति द्वारा इन दुर्गुणों से मुक्ति पाने के लिए सतर्कता नहीं अपनाई जाती है, तो ये मनुष्य के अन्दर इस तरह घर कर जाते हैं कि पैग़म्बर (सल्ल॰) कहते हैं—

> “आदम की सन्तान बूढ़ी हो जाती है, मगर उसमें दो चीज़ें सदैव जवान रहती हैं : (एक) धन-सम्पत्ति का लोभ और (दूसरी) जीने की लालसा।” (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस सन्दर्भ में महर्षि भरद्वाज के वचन हैं—

उत्पन्नस्य रुरोः शृंगं वर्धमानस्य वर्धते।

प्रार्थना पुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते।।

(दे॰ महाभा॰ 13/93/41)

अर्थात् "जैसे उत्पन्न हुए मृग का सींग उसके बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता जाता है, उसी प्रकार मनुष्य की (धन की) प्यास सदा बढ़ती ही रहती है, उसकी कोई सीमा नहीं है।"

और महर्षि कश्यप ने कहा—

"इस पृथ्वी पर जितने धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब किसी एक पुरुष को मिल जाएँ तो भी उसे सन्तोष न होगा।"

(महाभा॰ 13/93/40)

गौतम महर्षि ने स्पष्टतः कहा है—

न तल्लोके द्रव्यमस्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत्।
समुद्रकल्पः पुरुषो न कदाचन पूर्यते।।

(महाभा॰ 13/93/42)

"संसार में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है, जो मनुष्य की आशा का पेट भर सके। पुरुष की आशा समुद्र के समान है वह कभी भरती नहीं।"

महर्षि विश्वामित्र का लोभ एवं तृष्णा के सन्दर्भ में विचार इस प्रकार के हैं—

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।
अथैनमपरः कामस्तृष्णाविध्यति बाणवत्।।

(महाभा॰ 13/93/43)

"किसी वस्तु की कामना करनेवाले मनुष्य की एक इच्छा जब पूरी होती है, तब दूसरी नई उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार प्यास तीर की तरह मनुष्य के मन पर चोट करती ही रहती है।"

दौलत की प्यास और धन के लोभ के प्रति कुछ लोगों की यह सोच होती है कि जब धन और उपभोग सामग्री प्रचुर मात्रा में एकत्र हो जाएँगी तो धन की प्यास और उसका लोभ ख़त्म हो जाएगा। लेकिन महर्षि अत्रि का कथन इसके विपरीत है कि भोगों की कामना वस्तु के उपभोग से कभी

तृप्त नहीं हो सकती। अनुशासन पर्व में है—

न जातु कामः कामनामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णावर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।।

(13/93)

अर्थात् "भोगों की कामना उनके उपभोग से कभी नहीं शान्त होती। बल्कि घी की आहुति पड़ने पर प्रज्ज्वलित होनेवाली आग की तरह वह और भी बढ़ती ही जाती है।"

उपसंहार

अतः स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि लोभ एक ऐसी आग है कि जो—एकगेहे जातवेदाः प्रदीप्तः कृत्स्नं ग्रामं दहते—अर्थात् एक घर में अग्नि लग जाए तो पूरे गाँव को जला डालती है। और—अलोऽप्यग्निर्वनं कृत्स्नं दहत्याश्रयसंधयात्—यानी कि थोड़ी-सी आग भी ईंधन का आश्रय पाकर सारे वन को जला देती है—यह मनुष्य के सभी शुभ गुणों को विनष्ट करके मनुष्य में छुद्रता, दुष्टता, निकृष्टता, नीचता, संकीर्णता, और नीच आचरण को पैदा करता है और मनुष्य को अधम, ओछा, कमीना, कुत्सित, क्षुद्रात्मा, घटिया, निकृष्ट एवं हीनकर्मा बनाकर रख डालता है। इतना ही नहीं महाभारत कहती है कि लोभ मनुष्य के धर्म का नाश करता है।[1] यह सब पापों का घर होता है।[2] यह कभी समाप्त न होनेवाला रोग है।[3] लोभ बुद्धि को नष्ट करता है और बुद्धि के नष्ट हो जाने पर लोभी मनुष्य निर्लज्ज हो जाता है।[4] लोभ मगरमच्छ की तरह होता है कि सबकुछ निगल जाता है, लोभ से ही मनुष्य पाप करने लगता है।[5] अज्ञान और अतिलोभ में कोई अन्तर नहीं होता।[6] अतः मनुष्य को चाहिए कि—

1. सभा॰ 71/34,
2. वन॰ 207/58,
3. वन 313/92,
4. उद्योग॰ 72/18,
5. शान्ति 158/2,
6. शान्ति 159/9,

सर्वास्ववस्थासु नरो लोभं विवर्जयेत्।।

(अनु॰ 93/143)

अर्थात् "सभी अवस्थाओं में मनुष्य को लोभ का त्याग कर देना चाहिए।"

लोभ यद्यपि मनुष्य की प्रकृति में बसी हुई है।[1] तदपि इसे पूर्णतः नियंत्रित करने के और नगण्य की अवस्था में रखने का पूरा प्रयास किया जाना चाहिए और फिर जब हम इस विषय में कामयाब होंगे तभी हमें पारलौकिक सफलता मिल सकती है। क़ुरआन की सूरा-64 और 59 में कहा गया है—

व मंय्यू-क़-शुह्-ह नफ़सिही फ़-ऊलाइ-क हुमुल-मुफ़्लिहून।।

(आयत क्रमशः 16 व 9)

अर्थात् "और जो अपने मन के लोभ एवं कृपणता से सुरक्षित रहा, तो ऐसे ही लोग सफल हैं।"[2]

रामचरित मानस के एक महानायक और श्रीरामचन्द्र जी के परम मित्र व भक्त श्री सुग्रीव जी, भगवान श्रीरामचन्द्र जी और उस व्यक्ति को जो अपने मन को लोभ से मुक्त कर लिया हो में कोई अन्तर नहीं मानते अर्थात् लोभ से मुक्त व्यक्ति पुरुषोत्तम के गुणों को प्राप्त कर लेता है। किष्किंधा काण्ड में है—

---

1. क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-128
2. उपरोक्त आयत में कृपणता के लिए 'शुह्ह' शब्द प्रयुक्त हुआ है और यह शब्द 'नफ़सिही के साथ प्रयुक्त हुआ है। इस सम्बन्ध में क़ुरआन के महापंडित अबुल आला मौदूदी (रह॰) कहते हैं—"शुह्ह शब्द अरबी भाषा में कंजूसी और कृपणता के लिए प्रयुक्त होता है, मगर जब इस शब्द को मन से सम्बद्ध करके शुह्हे-नफ़्स (मन का शुह्ह) कहा जाता है तब यह तंगनज़री, तंगदिली, कम हौसलगी और दिल के छोटेपन का समानार्थी हो जाता है, जो कृपणता से आगे की चीज़ है, बल्कि ख़ुद कृपणता की भी असल जड़ वही है। इसी कारण क़ुरआन ने इस बुराई से बच जाने को सफलता की ज़मानत कहा है और अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने इनको उन अत्यन्त बुरे मानवीय गुणों में गिना है।"

(दे॰ हिन्दी तलख़ीस तफ़हीमुल-क़ुरआन, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 630)

लोभ पाँस जेहिं गर न बँधाया।
सो नर तुम्ह समान रघुराया।।
(21/3)

अर्थात् "लोभ की फाँसी से जिसने अपना गला नहीं बँधाया, हे रघुनाथ जी! वह मनुष्य आप ही के समान है।"

श्रीमद्भगवद्गीता में श्री कृष्ण जी ने मनुष्य में पाए जानेवाले तीन अवगुणों का उल्लेख किया है और इन्हें मनुष्य का शत्रु एवं नरक का द्वार बताया है। उन अवगुणों में एक अवगुण लोभ भी है। कहा—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्रयं त्यजेत्।।
(गीता 16/21)

"काम, क्रोध तथा लोभ ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जानेवाले हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिए।"

विभिन्न पक्षों और तर्कों एवं प्रमाणों से हमने देखा कि 'लोभ' कितना निकृष्ट एवं मनुष्य को अधम बना देनेवाला अवगुण है। अतः हर मनुष्य को चाहिए कि अपनी मनुष्यता की रक्षा हेतु इस तबाह कर देनेवाले अवगुण से यथासंभव बचने एवं मुक्त रहने का ऐसा ही प्रयास करे जैसा कि किसी प्राणघातक बीमारी से मुक्त होने के लिए किसी मरीज़ द्वारा प्रत्येक उपाय किए जाते हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वह हमें इसका सामर्थ्य प्रदान करे और इस अवगुण से बचे रहने का सौभाग्यशाली बनाए।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।
(यजु॰ 40/16)

"हे प्रकाशस्वरूप करुणामय प्रभो! तू हमें उत्तम मार्ग से अभ्युदय की ओर ले चल। हे देव! तू सब हमारे कर्मों को जानता है। हमारे पाप से सब कुटिल पाप दूर कर। तेरी विशेष नमनपूर्वक स्तुति हम करते हैं।"

❖❖